

आशीष प्रिय साईं साहब नमोऽस्तुति !

जिन दिनों श्री महाराज श्री परम हंस आश्रम की कुटिया में निवास करते थे उन दिनों हमारे साईं साहब नित्य सवेरे श्री महाराज श्री के पास आते थे । आपस में मिल-जुलकर कथा सत्संग की नवीन-नवीन भाव-भीनी बातें करते थे । एक दिन हमारे साईं साहब जब विराजमान थे । उसी समय कुछ लोग वहां आये और श्री महाराजजी के चरण छूकर प्रणाम करके चले गये । तब साईं साहब ने लोटे में से जल लेकर मन्त्र पढ़ गंगा जमुना का नाम लेकर श्री महाराजजी के चरणों पर छींटें लगाये और अपने गोद में चरणों को लेकर सहलाने लगे । साईं साहब का श्री महाराजजी के प्रति इतना गाढ़ वात्सल्य प्रेम था कि जब आते उनके चरणों को गोद में ले लेते थे और चारों ओर देखते थे । कांटे या फोड़ा फुन्सी देखकर उसे निकालते या उस पर बेजलेन लगा देते थे । फिर प्यार से सहलाते हुए सत्संग की चर्चा करते थे । जब साईं साहब ने चरणों पर छींटें देकर, पोंछ-कर फिर गोद में लिया तो श्री महाराज जी मुस्कराने लगे । साईं साहब ने कहा कि आजकल लोग सब अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये ही आते हैं और प्रणामकर अपनी कामनाओं को कूड़ा छोड़ जाते हैं । जल से उन कामनाओं को मिटा दिया । अब आप भी

प्रणाम करवाना बन्द करे दो । मना करवा दो प्रणाम करने को । क्योंकि प्रणाम करने वाने पुण्य को ले जाते हैं । श्री महाराज जी मुस्कराये और बोले- आप की बात सत्य है कि वे हमारा पुण्य ले जाते हैं । परन्तु हमारे पुण्यों से यदि इनका कल्याण हो जाये तो यह सबसे उत्तम है । हम सन्यासी हैं । पाप-पुण्य दोनों का परित्याग करके ही आये हैं । श्रद्धावान पुण्य ले जाते हैं, निन्दा करने वाले पाप ले जाते हैं । और हम पाप-पुण्य दोनों से मुक्त हो जाते हैं । मुक्ति ही तो हमें चाहिए । पाप यदि लोहे की बेड़ी है तो पुण्य सोने की । दोनों ही बन्धन हैं । उन दोनों बन्धनों से मुक्ति ही हमारा स्वरूप है ।

साई साहब सुनकर बड़े प्रसन्न हुए । बोले- यदि कोई अपने इष्ट के कुशलार्थ पुण्य करता हो तो उसे क्या करना चाहिए ? महाराज जी बोले-उन्हें अपने पुण्यों की हर तरह से सुरक्षा करनी चाहिए । क्योंकि वे पुण्य प्रियतम के हैं । प्रियतम की सम्पत्ति, तो बढ़ानी ही चाहिए । सब कुछ प्रियतम को समर्पण कर स्वतः ही जीवन मुक्त हो जाता है ।

ऐसी ऐसी मधुर बातें सुनकर हम सत्संगी लोग बड़े ही आनन्दित हुए । परस्पर एक दूसरे की रहनी को सर्वश्रेष्ठ मानना आदर करना एक दूसरे का कुशल चाहना सन्त ही जानते हैं ।

श्री हरिः

वैदही-पदपदमराग-रञ्जित उर अन्तर ।
मुख में राधा नाम, सदा निष्काम सन्त वर ॥
भक्ति सुधा सुर धुनी, सिंध मरु लाइ बहाई ।
जन-जन मनकी रची, नाम सुर तरु फुलवाई ॥
प्रीति नीति रस रीति सों, प्यारी श्रीरघुचंद की ।
वृन्दावन विहरें रहैं, जै हो मैगसिचन्द की ॥

पूज्यपाद अनन्त श्रीस्वामी

अखण्डानन्द सरस्वती जी महाराज

ऊटी ३१-०५-४७